जैन धर्म, जैन-दर्शन तथा श्रमण संस्कृति

—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

जैन धर्म की गणना संसार के प्रमुख, प्रभावपूर्ण एवं प्रतिष्ठित धर्मों में की जाती है। जैन धर्म और जैन समाज ने एक स्वस्थ तथा प्रौढ़ आचारसंहिता का निर्माण किया है जिसे हम श्रमण-संस्कृति के नाम से अभिहित करते हैं। इस संस्कृति के विश्व की संस्कृति को अनेक मौलिक तथा अभिनव प्रदेय हैं जो कि आज की मानवता के लिए अत्यन्त उपादेय, महनीय एवं तुष्टि-दायक हैं।

वास्तव में जैन धर्म हिन्दू धर्म के व्यापकत्व में समाहित हो सकता है और इस धर्म एवं संस्कृति का निरीक्षण-परीक्षण-मूल्यांकन एक विशाल, विस्तीर्ण एवं उदार मान्यताओं से संपृक्त होना चाहिए। जो महासागर है उसे महासागर की ही दृष्टि से निरखा-परखा जाना चाहिए और उसे किसी भी प्रकार सरोवर की संकीर्णता में आबद्ध अथवा सीमित नहीं किया जाना चाहिए। जब कोई धर्म अथवा संस्कृति सम्प्रदाय या सीमाओं में परिमित होने लगता है तो उसके उन्मुक्त विकास एवं परिपक्व पुरोगति में अवरोध उत्पन्न होने लगता है और वह अनेक प्रकार की विषमताओं तथा विचारों से गलित होने लगता है। यही दृष्टि प्रगतिशीलता की जननी है।

कतिपय विद्वानों का ऐसा अभिमत है कि जैन धर्म अनादि काल से भारत में प्रचलित है। विश्व के प्राचीन धर्मों में जैन धर्म का भी स्थान है। कुछ पंडितों का मत है कि संसार का आदिम मानव जैन ही था परन्तु इस दिशा में मत-मतान्तर मिलते हैं। जैन धर्म के आदिम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव स्वामी हैं। भारत तथा आर्य-संस्कृति के आदि एवं मूल ग्रन्थ ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में ऋषभदेव तथा नेमिनाथ के नाम आते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि द्रविड़ जाति की भी कोई प्रशाखा जैन धर्मावलम्बिनी रही है। जैन-संस्कृति के इतिहासविदों की यह सम्मति है कि सिन्धु सभ्यता के प्राचीन एवं महान् ध्वंसावशेष मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा के पुरातत्वीय उत्खननों से भी जैन धर्म की पुरातनता प्रमाणित होती है। भगवान् पार्श्वनाथ तथा तीर्थंकर महावीर स्वामी को जैन धर्म के अन्तिम तीर्थंकरों के रूप में ग्रहण किया गया है। भगवान् महावीर स्वामी अत्यन्त लोकप्रिय तीर्थंकर हुए और भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में उनको एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय इतिहास ने उनको विशिष्ट रूप में अपने क्रोड़ में सुशोभित किया है। उन्होंने जैन धर्म को लोकधर्म तथा श्रमण-संस्कृति को जैन-संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठित किया और जैन-दर्शन को कतिपय नवीन सूत्र तथा तत्त्व प्रदान किए।

जैन-दर्शन और श्रमण संस्कृति अतीव गरिमा-मंडित, वैचारिक एवं श्रेष्ठ सैद्धान्तिक-व्यावहारिक भित्ति पर स्थित है। जैन-संस्कृति को वैदिक-संस्कृति के विरुद्ध एक क्रान्ति के रूप में निरूपित, प्रतिपादित किया जाता है। भारतीय संस्कृति में जो चार महान् क्रान्तियां हुईं, उनमें जैन-बौद्ध धर्म के उद्भव को क्रान्ति के रूप में मान्यता प्राप्त है। यह द्वितीय क्रान्ति थी। वैदिक धर्म और जैन धर्म में आधारभूत अन्तर यह है कि जहां वैदिक संस्कृति संसार को सादि तथा सान्त के रूप में मानती है वहां जैन या श्रमण संस्कृति संसार को अनादि तथा अनन्त के रूप में स्वीकार करती है।

वस्तुतः जैन धर्म, जैन दर्शन और श्रमण संस्कृति के तीन प्रधान और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त अथवा तत्त्व हैं—अहिंसा, तपस्या और अनेकान्तवाद। ये त्रिपुरी हैं और इसी त्रिवेणी पर श्रमण-संस्कृति रूपी तीर्थराज प्रयाग बसा हुआ है। उपरिलिखित तीन सिद्धान्तों में ही जैन दर्शन का नवीनतम निष्कर्ष अनुस्यूत है। इन तीन तत्त्वों में ही अन्य सिद्धान्तों को परिगणित किया जा सकता है।

श्रमण संस्कृति का मूल मंत्र है कि प्राणीमात्र के प्रति समता और विश्व के समस्त जीवों के प्रति दया-समवेदना-सहानुभूति की भावना-कामना का अधिकाधिक प्रसरण-क्रियान्वयन हो। भारतीय संस्कृति के समान श्रमण-संस्कृति में भी भौतिक तत्त्व की अपेक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्म-तत्त्व की महत्ता तथा प्राधान्य को स्वीकार किया गया है। श्रमण-संस्कृति निवृत्ति प्रधान है और जैन धर्म तपप्रधान कर्म है। श्रमण-संस्कृति में आत्म-शुद्धि को जीवन का प्रधान लक्ष्य माना गया है और इसी हेतु इस धर्म में तपस्या को बड़ी महिमा एवं प्रमुखता प्राप्त है। जैन धर्म और श्रमण-संस्कृति की नींव आध्यात्मिकता, तपस्या, त्याग, सत्य एवं विश्व-प्रेम, विश्व-मैत्री के सूत्रों से निर्मित है। प्रायः ये समस्त तत्त्व भारतीय संस्कृति में सहजोपलब्ध हैं। श्रमण-संस्कृति के पाँच प्रधान महाव्रत हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

अहिंसा का जैन धर्म में बड़ा सम्मान तथा गुणगान मिलता है। श्रमण-संस्कृति में अहिंसा को अतीव व्यापक रूप में ग्रहण किया गया है। यदि हम अहिंसा को जैन दर्शन और संस्कृति का प्राण कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। किसी भी जीव की मन, वचन और काया से हिंसा न करने का नाम ही अहिंसा है। अहिंसा के व्यापक दायरे में दया, सहिष्णुता आदि के महान् गुण समाहित हैं। जैन-मुनियों और सन्तों का जीवन व आचरण अहिंसा का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है। समूचा जैन-समाज अहिंसा को व्यावहारिक रूप में स्वीकार करता है।

अस्तेय का शाब्दिक अर्थ होता है—चोरी न करना। परन्तु इस तत्त्व का गूढ़ार्थ अथवा मूल मन्तव्य यह है कि जो वस्तु अपनी नहीं उस पर आधिपत्य स्थापित नहीं करना चाहिए। आज की सभ्यता से उत्पन्न कलुषता, आपाधापी, दौड़-धूप, मृगतृष्णा के निराकरण का सर्वोत्तम उपाय या विधि अपरिग्रह है। संसार के सुखों का अपनी इच्छा से त्याग कर देना, तृष्णा से विरक्ति और अनेक वस्तुओं के संग्रह का मोह-त्याग ही वास्तव में अपरिग्रह है। असंचय ही अपरिग्रह है। सत्य जीवन का सार है। सत्य ही जीवन है और जीवन ही सत्य है। ब्रह्मचर्य से शक्तियों का आसेचन होता है और हमारा मन एकोन्मुख होता है। क्या गृहस्थ और क्या संन्यासी, साधु, यति—सबके लिए ब्रह्मचर्य की उपादेयता अगाध, अमोघ एवं अपरिहार्य मानी गई है। ब्रह्मचर्य निष्ठा, साधना तथा ध्यान-अन्विति की मंजूषा है। ब्रह्मचर्य तत्त्व को महावीर स्वामी ने जैन धर्म को प्रदान किया।

श्रमण-संस्कृति की रगों में तप का शुद्ध, पवित्र, निर्मल और बहुमूल्य रक्त प्रवहमान है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त महाव्रतों को कार्य रूप में परिणत करने का सम्पूर्ण श्रेय तपश्चर्या को है। तप ही मानव को धर्म की ओर सोल्लास उन्मुख करता है। जैन धर्म में दो प्रकार के तप माने गये हैं : (क) बाह्य तप, (ख) आभ्यंतरिक तप। बाह्य तप के अन्तर्गत अनशन, अवमोदरिका, भिक्षाचर्या, रस-परित्याग, काया-क्लेश, संलीनता आदि आते हैं। आभ्यन्तर तपों में प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग आदि की गणना होती है। जहां बाह्य तप शरीर के दृश्यमान पदार्थों को शुद्ध करता है वहां आभ्यन्तर तप शरीर के आन्तरिक पदार्थों तथा तत्त्वों को विमल बनाकर, हमारे अन्तःकरण को शुचि करता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जैन संस्कृति के उपरिलिखित महाव्रतों की हिन्दू-संस्कृति में भी विशेष महत्ता है। उपनिषदों में यह तथ्य बारम्बार उभर कर आया है कि ईश्वर ने तप के बल से ही विश्व का निर्माण किया है। उपनिषदों में तपस्या पर बड़ा बल दिया गया है। जैन-संस्कृति के मूलभूत दर्शन से गांधी-दर्शन सर्वाधिक रूप में प्रभावित हुआ। श्रमण-संस्कृति में सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र को मोक्ष के तीन मार्ग के रूप में ग्रहण किया गया है। आदि काल से ही श्रमण-संस्कृति मानव को इस सच्चिदानन्द मोक्ष की ओर बढ़ने की ही प्रेरणा देती आई है।

अनेकान्तवाद ही एक ऐसा उपादान है जो श्रमण-संस्कृति की मौलिकता, पृथकता तथा स्वयंभू स्थिति को सिद्ध करने में पर्याप्त शक्ति रखता है। अनेकान्तवाद जैसा दर्शन-तत्त्व अन्यत्र सर्वथा अनुपलब्ध है। इसे जैन-दर्शन में अनेक नामों से अभिहित किया गया है। यथा—स्याद्वाद, अपेक्षावाद, सप्तभंगी आदि। अनेकान्तवाद को जैनागम के जीव अथवा बीज के रूप में ग्रहण किया गया है। यह जैन-दर्शन की महान् विभूति और अनिर्वचनीय उपलब्धि है। यह वैचारिक दर्शन सत्य की अमर-अजर शाश्वत स्थिति पर संस्थित है। यह निश्चय व्यवस्था का स्थापनकर्ता है। समन्वय की स्थिति को स्वीकार करने के कारण इसे अनेक धर्मात्मक रूप प्राप्त हैं। स्यात् का अर्थ कदाचित् होता है और स्यात् दोनों ही विरोधी स्थिति को स्वीकार करता है और यह मानता है कि कदाचित् यह भी हो सकता है, कदाचित् यह भी ठीक है और कदाचित् वह भी हो सकता है और कदाचित् वह भी ठीक है। दोनों ही सम्भाव्य स्थितियों की संभावना की जाती है। उदाहरणार्थ—

बौद्ध दर्शन दुःखवादी दर्शन है। वह संसार को सदा क्षणिक रूप में ग्रहण करता है। परन्तु सांख्य दर्शन के अनुसार संसार सर्वथा अविनाशी और नित्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्तवाद संधि कराने वाला और सामंजस्य कराने वाला है। वह दो विभिन्न और विरोधी-विगामी दृष्टियों में एकता स्थापित करता है।

अनेकान्तवाद दो दृष्टियों से तत्त्व व्यवस्था करता है। वे हैं—

(क) द्रव्य दृष्टि—इसके अनुसार किसी भी वस्तु का नाश नहीं होता और वस्तु नित्य है।

(ख) पर्याय दृष्टि—इसके मतानुसार वस्तु अनित्य तथा परिवर्तनशील है।

इन दोनों दृष्टियों से आज उपरिलिखित दृष्टान्त पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। पर्याय-दृष्टि से बौद्ध दर्शन सर्वथा समुचित है। द्रव्य की दृष्टि से सांख्य दर्शन ठीक है। परमाणुओं का नाश नहीं होता। निष्कर्ष यह है कि पूर्ण वस्तु नित्यानित्यात्मक है। इस प्रकार अनेकान्तवाद का दर्शन अद्भुत शक्तियों एवं परिहार-अंशों से आपूर्ण है।

आज के युग और संसार में अनेकान्तवाद की महती उपयोगिता है। संसार में संकीर्णता, स्थानीयता, फिरकाबाजी, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता आदि की प्रवृत्तियां पनप रही हैं। उन सबकी अचूक दवा अनेकान्तवाद है। विश्व में धर्म के नाम पर होने वाले भयानक रक्तपातों की रामबाण औषधि अनेकान्तवाद में सरल रूप में खोजी जा सकती है। अनेकान्तवाद संसार को शान्ति तथा प्रेम का पवित्र संदेश देता है। जैनों का स्याद्वाद ही महान् वैज्ञानिक आइंस्टीन का सापेक्षवाद है। जैनों का परमाणुवाद आज के विज्ञान द्वारा सर्वथा सम्पुष्ट है। इस प्रकार जैन-दर्शन की अनेक मान्यताएँ आज के विज्ञान द्वारा समर्थित-प्रतिपादित हो रही हैं जिनसे स्पष्ट है कि जैन धर्म, जैन दर्शन और श्रमण संस्कृति वैज्ञानिक, संतुलित और युगानुकूल हैं। श्रमण- संस्कृति का स्थायी और ऐतिहासिक महत्त्व है। इस संस्कृति ने वैदिक धर्म और संस्कृति में मान्य कर्मकाण्ड, यज्ञ-अनुष्ठानों के बाहुल्य, पशुबलि तथा आडम्बर का विरोध किया।

आजकल विश्व के उबलते हुए वातावरण में श्रमण-संस्कृति शीतल सुहावनी जल-वृष्टि के समान है। उसके अनेक सिद्धान्त और अवयव समूची मानवता के लिए वरदान के सदृश हैं। एक प्रकार से जैन-संस्कृति और जैन धर्म मानव संस्कृति तथा मानवधर्म के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। जैन-धर्म और श्रमण-संस्कृति में वे सब गुण, विशिष्टताएँ और महानताएँ हैं जो कि एक मानव संस्कृति में होनी चाहिए। चाहे कोई व्यक्ति जैन हो अथवा जैन न हो, परन्तु वह आदर्श धर्मनिष्ठ और नैतिक आचरणशील होने के लिए जैन-सिद्धान्तों को स्वयमेव स्वीकार कर लेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन न होने पर भी हम आचरण, कर्त्तव्य तथा मान्यताओं में जैन ही रहते हैं, इसलिए जैन धर्म मानव धर्म के रूप में हमारे समक्ष प्रतिष्ठित है।

जैन शब्द 'जिन' धातु से व्युत्पन्न है। इसका शाब्दिक अर्थ होता है इन्द्रियों पर संयम रखने वाला। इस दृष्टिकोण से यदि हम मानव-चिंतन करें तो हमें यह विदित होता है कि जो भी व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर संयम-नियंत्रण-नियमन रखता हो वह जैन है—यह आवश्यकता नहीं कि उसे जैन होना ही चाहिए। इस दृष्टि से ही जैन संस्कृति को बड़ी महत्ता तथा व्यापक गौरव प्राप्त हो जाता है। इसी दृष्टि से जैन धर्म के आचार्यों और जैन धर्मावलम्बियों को विचार करना चाहिए और समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ आचरण-व्यवहार करना चाहिए। इससे राष्ट्रीय एकता तथा भावनात्मक समन्वयीकरण की अभीप्सित-वांछित भावनाएँ प्रबल, प्रबुद्ध तथा जाग्रत हो सकेंगी और हम साम्प्रदायिक सद्भाव का आदर्श रूप उपस्थित करने में समर्थ-सक्षम हो सकेंगे।

विदेशों में जैन-धर्म और बौद्ध-धर्म के प्रति बड़ा सम्मान और आकर्षण बढ़ गया है। अमेरिका के 'बीटनिक' आज जैनाचरण करते हुए दिखायी पड़ रहे हैं। अहिंसा और अनेकान्तवाद पाश्चात्य देशों के अनेक वात्याचक्रों और भौतिक संघर्षों की सुधा सिद्ध हो सकती है।

अहिंसा की व्यापकता

जैनधर्म की अहिंसा, अहिंसा का चरम रूप है। जैनधर्म के अनुसार मनुष्य, पशु, पक्षी. कीड़े, मकोड़े, आदि के अतिरिक्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति में भी जीव हैं। मिट्टी के ढेले में कीड़े, आदि जीव तो हैं ही, परन्तु मिट्टी का ढेला स्वयं पृथ्वी कायिक जीवों के शरीर का पिंड है। इसी तरह जल बिन्दु में यन्त्रों के द्वारा दिखने वाले अनेक जीवों के अतिरिक्त वह स्वयं जल-कायिक जीवों के शरीर का पिंड है। यह बात अग्निकाय, आदि के विषयों में भी समझनी चाहिए। इस प्रकार का कुछ विवेचन पारसियों की धर्म पुस्तक 'आवेस्ता' में भी मिलता है। जैसे हमारे यहां प्रतिक्रमण का रिवाज है उसी तरह उनके यहां भी पश्चाताप की क्रिया करने का रिवाज है। उस क्रिया में जो मंत्र बोले जाते हैं उनमें से कुछ का भावार्थ इस तरह है—"धातु उपधातु के साथ जो मैंने दुर्व्यवहार (अपराध) किया हो उसका मैं पश्चात्ताप करता हूं।" "जमीन के साथ मैंने जो अपराध किया हो उसका मैं पश्चात्ताप करता हूं।" "पानी अथवा पानी के अन्य भेदों के साथ जो मैंने अपराध किया हो उसका मैं पश्चात्ताप करता हूं।" "वृक्ष और वृक्ष के अन्य भेदों के साथ जो मैंने अपराध किया हो उसका में पश्चाताप करता हूं। महताब, आफताब, जलती अग्नि, आदि के साथ जो मैंने अपराध किया हो मैं उसका पश्चात्ताप करता हूं।"

पारसियों का विवेचन जैनधर्म के प्रतिक्रमण-पाठ से मिलता जुलता है जो कि पारसी धर्म के उपर जैनधर्म के प्रभाव का सूचक है।

स्वामी रामभक्त के लेख 'जैनधर्म में अहिंसा' से साभार

वर्णी — अभिनन्दन—ग्रन्थ पृ० सं० १२४-२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org